होलकर हिन्दीग्रन्थमाला संख्या २८

गुर्जरगिराके अजर और अमरकवि
श्रीन्हानालालजी
कृत

युगपलटा और महासुदर्शन



हीन्दीरूपान्तर-
कर्ता
श्रीगिरिधरशर्माजी नवरत्न
काव्यालङ्कार.



प्रकाशक
चि० ईश्वरलालशर्मा विद्यार्थी
नवरत्न-सरस्वती-भवन
झालरापाटन.
राजपूताना

प्रथमवार } { मूल्य रु. १)

श्रीयुत गजानन विश्वनाथ पाठक द्वारा
आदित्यमुद्रणालय (अमदावाद) में मुद्रित



मेरी बात



उषा और जयाजयन्तके पढनेवाली हिन्दीजनता खूब जानती है कि कवि श्रीनाहनालाल दलपतरामजी वर्तमान संसारके विराट् कविसम्राट हैं। अभी कलकी बात है कि सारी गुजरातने इनका **सुवर्णजन्म-महोत्सव** मनाया और इसको प्रारम्भ हुआ बंबईसे। जो सनमान जीवनकालमें गुजरातने कवि श्रीनाहनालालजीको दिया वह सनमान जगत-भरमें किसीको मिला हो यह जानके बाहर है। बंबईके हिन्दू, मुसलमान, पारसी, विद्यारसिक नरनारियोंके सुप्रतिष्ठित मंडलोंने बडी धूमधामसे इस महोत्सवको तीन दिनतक मनायो और इस सरस्वतीमहासत्रके आद्याचार्यका मान मुझे दिया। और स्वयं कविश्री नान्हालालजीने इसमहासत्रके समय, मेरे सभापतित्व में, उमरभरमें सबसे पहले, अपना अमरकाव्य (युगपलटा) पढ़कर जो महासम्मान मुझे दिया उसके लिये कितनी कृतज्ञता प्रकट कीजाय! इस समयके बाद ही कविने महासुदर्शन लिखा है। कविके ये दोनों काव्य दिव्य हैं, भव्य हैं। आज हिन्दी जनताके सन्मुख उपस्थित हैं। पहलेमें सुभद्राश्रीकृष्ण-संवाद है, दूसरेमें व्यासपांडवसंवाद है। महा-भारतके आधारपर कविने क्या भव्यप्रासाद निर्माण किया है! रसिकजन देखें और आनन्द उठायें। हिन्दीमें कविके भावोंकी रक्षाके साथ ही शैलीकी रक्षाका भी ध्यान रक्खा गया है। आशा है. कि इन काव्योंका रसास्वाद किये बाद हिन्दीजनता अनेकानेक इनसे भी बढ़कर दिव्य और भव्य रसकृतियोंके रचेजानेकी शुभलालसासे कवि श्रीनान्हालालजीकी दीर्घायु कामनामें मेरा साथ देगी एवमस्तु।

गिरिधरशर्मा.



श्रीयुत गजानन विश्वनाथ पाठक द्वारा
आदित्यमुद्रणालय (अमदावाद) में मुद्रित



मेरी बात



उषा और जयाजयन्तके पढनेवाली हिन्दीजनता खूब जानती है कि कवि श्रीनाहनालाल दलपतरामजी वर्तमान संसारके विराट् कविसम्राट हैं। अभी कलकी बात है कि सारी गुजरातने इनका **सुवर्णजन्म-महोत्सव** मनाया और इसको प्रारम्भ हुआ बंबईसे। जो सनमान जीवनकालमें गुजरातने कवि श्रीनाहनालालजीको दिया वह सनमान जगत-भरमें किसीको मिला हो यह जानके बाहर है। बंबईके हिन्दू, मुसलमान, पारसी, विद्यारसिक नरनारियोंके सुप्रतिष्ठित मंडलोंने बडी धूमधामसे इस महोत्सवको तीन दिनतक मनायो और इस सरस्वतीमहासत्रके आद्याचार्यका मान मुझे दिया। और स्वयं कविश्री नान्हालालजीने इसमहासत्रके समय, मेरे सभापतित्व में, उमरभरमें सबसे पहले, अपना अमरकाव्य (युगपलटा) पढ़कर जो महासम्मान मुझे दिया उसके लिये कितनी कृतज्ञता प्रकट कीजाय! इस समयके बाद ही कविने महासुदर्शन लिखा है। कविके ये दोनों काव्य दिव्य हैं, भव्य हैं। आज हिन्दी जनताके सन्मुख उपस्थित हैं। पहलेमें सुभद्राश्रीकृष्ण-संवाद है, दूसरेमें व्यासपांडवसंवाद है। महा-भारतके आधारपर कविने क्या भव्यप्रासाद निर्माण किया है! रसिकजन देखें और आनन्द उठायें। हिन्दीमें कविके भावोंकी रक्षाके साथ ही शैलीकी रक्षाका भी ध्यान रक्खा गया है। आशा है. कि इन काव्योंका रसास्वाद किये बाद हिन्दीजनता अनेकानेक इनसे भी बढ़कर दिव्य और भव्य रसकृतियोंके रचेजानेकी शुभलालसासे कवि श्रीनान्हालालजीकी दीर्घायु कामनामें मेरा साथ देगी एवमस्तु।

गिरिधरशर्मा



युगपलटा

युगपलटा

आकाशमें कोयलेंही न कूज रही हों
ऐसी बांसुरी बोल रही थी.
सागर और हिरणाके सङ्गम तीरपर
आकाशमें लिपी हुई चांदनीके पुञ्ज से
रेणुके समुन्नत पुञ्ज शिखरसे
बांसुरी बोल रही थी.

प्रभातका उदय होनेमें देरी थी.
वे प्रातः स्नान करने आये थे.
दुनियांको तज जाते हुए देवत्वके ऐसा
चन्द्रमा सागर पर लटकता था.

पूर्णिमा पश्चिममें अस्त हो रही थी.
अभीतक अरुणकी पग–पङ्खड़ियां
पूर्वके पर्देकी ओटमें थी.
तो भी अन्तरिक्ष चमत्कारपूर्ण था.
एक युग उतरकर दूसरा न आ रहा हो
ऐसा महायोग आसमानमें झलक रहा था.

वंसी भी मानो

अन्तिम बार ही न बज रही हो
ऐसी अनुपम मधुरता बरसा रही थी.
मानो भीतरसे स्वातिके मोती ही न झरते हों। २०
जगत मानो स्तव्ध हो गया. था.
प्रभात होनेमें भी मानो देरी होती थी.
चन्द्रदेव स्तम्भित जान पड़ते थे,
तारकसङ्घ स्तव्ध जान पड़ता था;
आसमानके गैबी गुम्बज
मानो फिरते २ स्तव्ध हो गये जान पड़ते थे;
सागरमें हृदयको समर्पण करती
हिरणा क्षणभर स्तव्ध हुई जान पड़ती थी;
कालचक्र घूमता हुआ, स्तव्ध हुआ जान पड़ता था.
मानो जगतको भी घड़ी एक ३०
बांसुरीने मधुरताकी मूर्च्छामें ही न डाल दिया हो. ३१
सागरकी जलघटाओंमें,
अन्तरिक्षकी पल्लव झाड़ियोंमें,
गगनकी अतल गुफाओंमें,

दिशाओंके निःसीम वनवनमें,
मधुरताकी किसी गैबी पांखोंपर बैठकर
बंसीबोल उड़ रहे थे.

"कान्हा !"

बंसीबोलका भी प्राण बोले
ऐसा मञ्जुल कलरव था,
और वह बंसीबोलमें लीन हो गया.

बंसी तो बजती ही जाती थी.
तारिकाएं टिमटिमाती खड़ी थीं,
मानो गोपिकाओंके नैनोंके प्रतिबिम्ब ही न हों.
फिर सरिता सरोवरसी उमड़ी,
मानो व्रजाङ्गनाओंका हृदय ही न हो.
सागर झूले चढ़ा
मानो व्रजकी झाड़ियां ही न हों.
जलपङ्खडियोंपर पद्मासन लगाकर
अस्त होता हुआ चन्द्रदेव
कान देकर बैठा.

मानो जगतके भावीकी आलोचना करता
समाधिस्थ कोई ऋषिआत्मा ही न हो.
अमृतकी झिरमिरसी.
जगतको भरती हुई मधुरता बरस रही थी.. ५५

" कान्हा ! आज क्या व्रज याद आया ? ५६

बटकी डाली धूजे,
वैसे अङ्गुलियां धूज उठीं.
मेघहृदयसे इन्द्रचाप गिरे और झिलजाय,
वैसे अधरसे बंसी गिरी ६०
और गिरती–गिरती झिल गयी.
बंसी नयनोंमेंसे पार हो कर.
ब्रह्माण्डको निहारते नयन,
बन्द होते हुए कमलसे बन्द हुए.
और पलक लगाकर खुले तब
लाजकी गुलाबी पदचिह्नावली
नयनोंकी कुसुमावलीमें पड़ गयी थी. ६७

" कौन—सुभद्रा ?

अरुणमेंसे उतरी ?
या प्रभातकी पांखोंसे आयी ?

अच्छा बहिना! आ,
द्वारका पावन होगी तेरे चरणसे.
कब आयी है ?
हस्तिनापुरके तो कुशल हैं न समाचार ?
हां, इस अस्त होती हुई पूर्णिमाको देख
रसपूर्णिमा याद आ गयी थी,
और रसपूर्णिमाकी रसवेणु छेड़ी थी;
इतनेमें ही दूसरी वंसी सी
बहिना ! तू बोल उठी । ''

" कान्हा ! यह व्रज नहीं है,
यह तो धरतीका छोर है

" हां, यह धरतीका छोर है.
धरित्रीका अन्त है ! धरित्रीका—
और यह पूर्णिमा आँथती है;
यह सागर गर्जना करता है—''

" यह सागर गर्जना करता है ?
या कालकी नौवत गड़गड़ाती है ? ८७

" यदुकुलकी कोयल
आज भीषण बोल बोलती है. " ८९

" हां कान्हां ! हां,
आज कोकिला घोर शब्द गर्जना करती है.
कारण कि, घोरयुग उदय हो रहा है,
कारण कि, धरित्री भरमें
भीषण—परछाईं फैल गयी है. " ९४

" यदुकुलकी कोकिला नहीं;
गाण्डीव—धन्वाकी सहचारिणी
आज गाज रही है;
अभिमन्युकी माता बोल रही है आज.
कह—कह हस्तिनापुरके समाचार. " ९९

" कान्हा ! तूने नहीं सुना १००
—तमाम जगत कहता है सो—
कि ' युगपलटा ' हो रहा है ? " १०२

" बहिना ! मैं पूछता हूँ
सो कुछ अपने जाननेको नहीं पूछता,
परन्तु इस बातके जाननेको कि तू क्या जानती है ?"

" तब सुन कान्हा ?
ज़ोरशोरसे जनता कहती है
कि युगपलटा होनेको है.
चौदह वर्षके बाद कलि बैठेगा;
और कलिका प्रारम्भ ही होगा

महाघोर संहारसे.
हस्तिनापुरकी नाँव डगमगा रही है."

" हां, चौदह वर्षके बाद कलि बैठेगा.
और मैंने भी सुनी है
अघोर—अघोर यह वाणी
कि कलिके मण्डान होनेके वर्षही
कुरुक्षेत्र शोणितधारसे फाग खेलेगा.
आज अवलोकन कर रहा था इसी वातावरणको.
जगत समझता है प्रभात हो रहा है,

मैं देखता था १२०
प्रभातमें इस रातकी पदावलीको." १२१

" मैंने सुना हैं, कान्हा !
कि शेषसे भार नहीं सहा जाता.
मथुरा–नगरी छोड़ दी;
जलधिमें धरित्री मिली जाती है वहाँ
द्वारावती बसायी मेरे वीरने;
तब धरती धूजी थी–" १२७

" परन्तु तब कालयोग न था आया
भूमिका भार उतारनेका ।" १२९

" और अब भी कितनी १३०
दूर है यह महासंयोग ?"
राजसूय यज्ञमें झण्डा तो ऊँचा कर दिया,
भारत राजकुलका मुकुटमणि होकर चमका;
अब कब आदृत करना है
जीवनके महामंडान ?
सुनी न लाक्षागृहकी वार्ता ?

देखी न द्रौपदीकी दयनीय दुर्दशा ?
अब भी बंसी बजाना है तुझे ?
अब तो मैं भी लाजों मरती हूं." १३९.

" बहिना ! सुमुहूर्तका डङ्का बजते हीं १४०

आसमानको भेदते और फरफराते उड़ेंगे
देव–निशान जयपल्लवाले.
सुभद्रा ! और क्या जानती है ?
आयी है तभीसे
विमनस्क करदिया मुझे. " १४५.

" वीर ! खेल कबतक खेलेगा ? " १४६

" बहिना ! सुन,
सारी जिन्दगी ही ब्रह्मलीला है–सुज्ञोंके लिये " १४८.

" लीला, रस–योगीन्द्रकी भी होती है,
लीला, राज–योगीन्द्रकी भी होती है. १५०

और तू देखता नहीं है ? कि
दूसरे युगका उदय होता है यह ?

मैं देखता था १२०
प्रभातमें इस गतकी पदावलीको." १२१

"मैंने सुना है, कान्हा !
कि शेषसे भार नहीं सहा जाता.
मथुरा–नगरी छोड़ दी;
जलधिमें धरित्री मिली जाती है वहाँ
द्वारवती बसायी मेरे वीरने;
तब धरती धूजी थी–" १२७

"परन्तु तब कालयोग न था आया
भूमिका भार उतारनेका !" १२९

"और अब भी कितनी १३०
दूर है यह महासंयोग !"
राजसूय यज्ञमें झण्डा तो ऊँचा कर दिया.
भारत राजकुलका मुकुटमणि होकर चमका:
अब कब आदत करना है
जीवनके महामंडान !
सुनी न लाक्षागृहकी वार्ता !

देखी न द्रौपदीकी दयनीय दुर्दशा ?
अब भी बंसी बज़ाना है तुझे ?
अब तो मैं भी लाजों मरती हूं." १३९.

" बहिना ! सुमुहूर्तका डङ्का बजते ही १४०.
आसमानको भेदते और फरफराते उड़ेंगे
देव–निशान जयपङ्खवाले.
सुभद्रा ! और क्या जानती है ?
आयी है तभीसे
विमनस्क करदिया मुझे." १४५.

" वीर ! खेल कबतक खेलेगा ? " १४६

" बहिना ! सुन,
सारी जिन्दगी ही ब्रह्मलीला है–सुज्ञोंके लिये " १४८.

" लीला, रस–योगीन्द्रकी भी होती है,
लीला, राज–योगीन्द्रकी भी होती है. १५०.
और तू देखता नहीं है ? कि
दूसरे युगका उदय होता है यह ?

कालिन्दीका कलकल नहीं है यह;
यह तो सागर-घोषणा हो रही है. " १५४

" तू भी सुनती है
और सुनता हूं मैं भी
बदले हुए ये काल्बोल. " १५७

द्यूतके कपट, द्रौपदीचीरहरण,
धर्मका अपमान, पाण्डववनवास,
फिर निर्वासन, लाक्षागृह— १६०

क्या क्या नहीं जानता है तू !
ये पुकारें तुझे नहीं बुला रही हैं ! १६२
" मैं भी सुनता हूं
पलटते युगके इस आमन्त्रणको.
दिशा दिशासे निमन्त्रण आ रहा है,
सुन रहा हूं. । "
" यह बंसी बोलकी आई है १६७
या कालकी नौबतकी प्रतिध्वनि ? " १६८
" यह है कालकी नौबतकी प्रतिध्वनि.

बहिना ! तू सच कहती है:

हस्तिनापुर तरङ्गोंमें पड़ा है,
शेषनाग सीस धुन रहा है,
देख ! सुभद्रा ! देख !
पूर्णिमा अस्त हो रही है पश्चिममें.
निचुड़ गयीं इसकी अमृतकिरणें,
और देख ! उगती भविष्य–लेखा सी
पूर्वमें अरुणोदयकी पद-रेखाएं."

"ये तो हैं संहारके श्रुतिबोल.
सुनकर आयी हूं मैं तो हस्तिनापुरमें,
कलियुग संसारके द्वारको खटखटाता है."

"पहले पहल देखा था मुचकुन्दने
इन आते हुए नये युगके पदचिह्नोंको.
त्रेतामें सोये हुए वे
द्वापरके अन्तमें जगे तब:
कलिकी परछाई पड़ी थी पृथ्वीपर.
छोटेसे वृक्ष, छोटीसी गायें:

कालिन्दीका कलकल नहीं है यह;
यह तो सागर-घोषणा हो रही है." १५४

" तू भी सुनती है
और सुनता हूं मैं भी
बदले हुए ये कालबोल." १५७

द्यूतके कपट, द्रौपदीचीरहरण,
धर्मका अपमान, पाण्डववनवास,
फिर निर्वासन, लाक्षागृह— १६०

क्या क्या नहीं जानता है तू ?
ये पुकारें तुझे नहीं बुला रही हैं ? १६२
" मैं भी सुनता हूं
पलटते युगके इस आमन्त्रणको.
दिशा दिशासे निमन्त्रण आ रहा है,
सुन रहा हूं. ।"
" यह बंसी बोलकी झांई है १६७
या कालकी नौबतकी प्रतिध्वनि ?" १६८
" यह है कालकी नौबतकी प्रतिध्वनि.

बहिना ! तू सच कहती है:

हस्तिनापुर तरङ्गोंमें पड़ा है,
शेषनाग सीस धुन रहा है,
देख ! सुभद्रा ! देख !
पूर्णिमा अस्त हो रही है पश्चिममें.
निचुड़ गयीं इसकी अमृतकिरणें,
और देख ! उगती भविष्य—लेखा सी
पूर्वमें अरुणोदयकी पद-रेखाएं."

"ये तो हैं संहारके श्रुतिबोल.
सुनकर आयी हूं मैं तो हस्तिनापुरमें,
कलियुग संसारके द्वारको खटखटाता है."

"पहले पहल देखा था मुचकुन्दने
इन आते हुए नये युगके पदचिह्नोंको.
त्रेतामें सोये हुए वे
द्वापरके अन्तमें जगे तब
कलिकी परछाई पड़ी थी पृथ्वीपर:
छोटेसे वृक्ष, छोटीसी गायें:

छोटे–छोटेसे मानवी,
और इनके छोटेसे उत्साहः
मुचकुन्दकी आंखोंने ये चमत्कार देखे
जगतमें फैले हुए इस युगपलटेके. १९०
बहिना ! तू दूसरी सुननेवाली है
आनेवाले युगकी इन घोर नादध्वनियोंको ।" १९२
" हस्तिनापुरमें सुनकर मैं आयी.
कान्हा ! खेल कबतक खेलने हैं ?
ब्रजके वन और यमुनाके तीर त्यागे,
तभीसे त्यागना था न खेलोंको.
अब देख ! इस अनोखे अरुणोदयको,
और इस नवयुगके नवधर्मको " १९८
" बहिना ! तू किसे ज्ञान देती है ? " १९९
" ब्रह्माण्डके मुकुटसे मेरे बीरेको २००
क्षण एक चढ़जाते हैं—कभी कभी—
ब्रह्मदेवपर भी परछाईके आवरण.
कृष्ण ! बंसीबोल समाप्त किये,

अब शङ्खघोष गूँजा.
सरिताके किनारे बंसीबोल सोहते हैं ?
सागरके तीरपर तो शोभा है शङ्खनादकी.
ला, बंसी मुझे दे;
मैं उसे सुन्दरियोंको सौंपूँगी.
उठा अपना पाञ्चजन्य,
और गुञ्जा संसार भरमें २१०
महासागरके इन महामन्त्रोंको." २११

अर्जुन–पत्नीके इस बोलसे
वायु भी थरथरा रहा था. २१३
" जमनाके तीरपर तू फूल था,
और फूल सा कुछ कुछ मधुरगन्ध देता था. २१६
आज युगपलटेके अरुणोदयको देख !
सागरके तीरपर धरित्रीके किनारे
आज वीर मेरा है जगन्मेघ
और मेघसा गर्जेगा जगतभरमें" २१९
"और सुभद्रा ! तूने सुनी ? २२०

यह बंसी भी तो भारी भारी बोलती है:
यह वेणु है रेवताचलके वनकी:
भीतर भरे हुए है सिंह–शब्दके हुङ्कार २२३
"आधी–आधी सदीके, मेरे वीर !
यहां–धरतीके अन्तभागमें
तुझ जगत–तपेसरीने तप मांडे:
आधी–आधी सदी भरके
रेवतवनके सिंहनाद झेले.
आधी–आधी सदी
सागरतीरपर सागरमन्त्रणा पी. २३०
व्रजमें तू था मधुरपकी झरमर.
सुराष्ट्रके किनारे तू शोभावाला
हुआ, गर्जता मेघाडम्बर.
बंसी–बोल घुट घुट कर
मेरे कृष्णदेवके हुए हैं मेघनाद.
गोपियोंके जीवन घड़े:
अब भारतका भाग्य घड़.
व्रजका रसविधाता हुआ:

अब बन भारतका भाग्य—विधाता.
देख ! अरुण आशिषें बरसा रहा है.
युगकी बाजी समेट ले."

वीराङ्गनाके शब्द-टङ्कारसे
प्राचीके द्वार खुले,
अरुणकी रेखाएं प्रकटीं,
और नवयुगके भाग्योदयकी—सी
कुङ्कुमकिरणें आसमानके भालमें खिंच गयीं,
सर्वत्र केसरिया रङ्ग छिंट गया
—मानो विश्वने केसरिया न किया हो.
पूर्वके इन केसरिया छींटोंको
महासागरने भी हृदयमें धारा,
और दुनियांके किनारे किनारे जा उछाला.
"वहिना !" हस्तिनापुरके चौकमें
महाभीषण पैर पड़ते-उठते है,
ये सागरलहरें उसकी हैं नकलें.
कानवाले सभी सुनते हैं.

आंखवाले सभी देखते हैं.
आज उगता है नया ही प्रभात,
और आज जगता है नया ही जगत.
प्रभात-प्रभातमें, बहिना !
जगतका अभिनव उदय होता है हो !

सोता है वह जगत उठता नहीं है.
कितने ही तारे रातमें उगते हैं,
कितने ही तारे रातमें अस्त होते है.
कल शामको जो सोया था,
वह जगत आज प्रभातमें नहीं है.
जगत कहते ही बहता पानी.
सूर्यदेव वे—के—वे हैं,
महाकाल वह—का—वह है;
तो भी प्रति-दिन उदय पाता है
नया जगत और नया प्रभात.

सुभद्रा ! सब पाते हैं आज
इस युगपलटेकी आहटको.
नगर-नगरके चौकमें

बोले जाते हैं ये महाबोल.
हिमाद्रि शिखरसे पड़ते-गड़गड़ाते.
गङ्गाके प्रपातकी प्रतिध्वनि
भारतको घेरती हुई सागर झाड़ियोंमें थर्रा रही है.
दिशा दिशाओंके साथ बातें करती हैं.
बदरीकेदारके धर्मतीर्थ
राम-सेतुसे बातें पूछते हैं.

जगन्नाथजीके जगत-तीर्थ
प्रभाससे इतिहास पूछते हैं,
गोकुल-मथुरा-वृन्दावनकी वनकुञ्जें
द्वारावतीकी सागरकुञ्जोंसे कथा पूछती है.
देख ! उदयाचलमें सूर्यदेव,
और अस्ताचलमें चन्द्रदेव:
पूर्व और पश्चिमने मानो कल्याणवार्ता न चलायी हो !
किरणोंके बाण फेंक-फेंक कर
मानो दिशाएं दिशाओंकी ओर
अँगुलियोंके इशारे ही न कर रहीं हों.

हस्तिनापुरके राजमहेलोंमें की
पर्दोंकी आहट नहीं सुनता

उसके कान ही नहीं है लोकसंग्रहके.
वहिना ! तेरा बीर बहरा है ?"

"मेरा भाई तो है बावन वीर.
कृष्णदेव तो है गभीर सागरके ऐसा ?"

"देख ! इस अरुणोदयमें देख,
हस्तिनापुरके सन्देश उतर रहे है,
धर्मराजने राजधानी छोड़ी,
कुन्ती माँने राजप्रसाद छोड़ा,

जगतलक्ष्मीसी द्रौपदीके जाते ही
हस्तिनापुरकी तेजलक्ष्मी हिरा गयी.
भरतकुलकी कुलमहिमासी
अन्य महारानियां नैहर सिधार गयीं.
और देख ! इस ह्स्तिनापुरके भी उस ओर
ज़रा उत्तरमें, ब्रह्मावर्तमें, सरस्वती तीरपर,
तेरे योगिनाथने खाण्डव-वन जलाया था वैसी
जलते हुए पहाड़ों-सी
कुरुक्षेत्रकी भकभक होती महाज्वालाएं.
अठारह–अक्षौहिणीका संहार,

भरतकुलका महाविनाश.
कैसा अनूठा है आजके प्रभातका युगपलटा." ३१२

"मेरा समर्थ वीर
बंसीनादमेंसे शंखनाद करेगा,
कोकिल बोलमेंसे मेघघोष गुंजावेगा,
कालिन्दीके कलकल्लोलमेंसे,
सागरघोष प्रकटावेगा,
भारतका भाग्य–विधाता होगा.
गीता गाकर जगद्गुरु बनेगा.
[सफल करेगा महाकालके महोपासक
मालव्यमहर्षि सान्दीपनिके
महासत्त्व–मय रहस्य मन्त्रोंको] ३२०

ऐसा उच्चारण करता है आजका प्रभात. ३२३

आज तेरा पुण्योदय उग रहा है.
आज तेरी जीवनसिद्धि प्रकट रही है.
पृथ्वीवासी भूलेंगे नहीं
संदेश वहनकरनेवाले आजके प्रभातको,
पृथ्वीमें कभी कभी ही उगते है–
आजके ऐसे प्रभात." ३२४

"पाञ्चजन्य लायी है?" ३३०

"प्रकृतिमूर्ति लक्ष्मीजीके कमरेसे
पाञ्चजन्य लेती आयी हूँ.
सागरघोषणा भरदूँ तेरे शंखनादमें
और तू गुंजा नगर-नगरके चौक.
मुझे दे इस बंसीको,
मैं इसे आर्यसुन्दरियोंको दूंगी;
और देशमहिलाएं बनेंगी
माधुरीकी युगमूर्तियाँ". ३३७

"सुभद्रा सुन!
मिरी आँखें देख रही हैं
क्षत्रियत्वको जगत जीतते हुए.
जगत पर्दोंकी ओटमें निहारते चक्षु
देख रहे हैं ब्राह्मणत्वको जगत जीतते हुए. ३४३

संसारयज्ञका आचार्य है ब्राह्मण;
इस ब्राह्मणकी यज्ञप्रेरणा है सोमवल्ली;
इस सोमवल्लीका स्वामी है सोमनाथ..

क्षत्रीयतीर्थ हस्तिनापुरका पड़ोस छोड़ा,
ब्राह्मणतीर्थ सोमनाथका पड़ोस साधा.
क्षत्रिय--यानी जगतकी वीरता,
ब्राह्मण--यानी जगतकी भव्यता,
देखता हूँ होनेवाले कुरुक्षेत्र प्रतिबिम्बित.
गाण्डीवधारीकी सहधर्मचारिणी !
ले सुन मेरा वचन है ! ३५३

जगतज्योतिषी ब्रह्मा जगतभाग्य लिखे,
कोई ऋषिजन युगविधाता हो,
ऐसा बनूंगा मैं भारतका भाग्य-विधाता;
द्वापरको समेटता हूँ,
कलिकी चौसर बिछाता हूँ
गोपियोंको वंसीनादसे खिलाया
उसी भाँति खिलाऊँगा सिंहनादसे सिंहोंको.
इस अरुणोदयसे भी विशेष
भाग्यके आँक डालूँगा भारतभाग्यमें.
माधुर्यके फूलको उतार देता हूँ मै भी. २६३
ले आजसे छोड़ता हूँ इस वंसीको.

स्मरणोंको भी मिटाये देता हूँ स्मृतिपटसे,
महाकालका दुन्दुभिनाद सा,
चौदह लोकको घोषणा सा,
गुँजाता हूँ अपना शंखनाद.
इस नादसे पापके ओट होंगे,
इस नादसे पुण्यकी भरती चढ़ेगी.
सुभद्रा ! सुन अपने बीरके शङ्खनादको
मानो आसमानमें कालकी पदध्वनि ही गरज न रही हो."

इसने गहन दिशाएं देखी,
इसने उछलते हुए महासागरको निहारा,
इसने आंखसे आसमानको मापा,
इसने अन्तरका उजेला पहचाना,
इसने पैरसे पृथ्वीको ठोक देखा".

फिर पुष्प सी बंसी
बहिन सुभद्राको दी,
कालपुष्प सा पाञ्चजन्य हाथमें लिया,
गजशुण्डमें श्वेत. कमल सा शंख सोहा.

मेघपत्तीमें कोई तारा विराजे,
इस तरह पाञ्चजन्यको अधरमें पधराया, २८३
और भीतर महाप्राण पूरा.
ब्रह्माण्डभरमें ब्रह्मशङ्खनाद गुञ्जरित हुआ.
मानो नवीनयुगके युगधर्मकी
नवीन ऋचाएं गरज उठीं
"ब्रह्मने तप आदरा,
तपोधन ब्रह्म प्रफुल्लित हुआ,
और इस प्रकार नवसर्जन सरजे.गये."
यह उपनिषद्वार्ता वीर !
तूने आज सच्ची की.
आवी-आधी सदीके सागरकी २९३
तेरी तपश्चर्या फली आज." २९४

इस शङ्ख घोषणासे—
आकाशके महादुर्ग फट गये,
और भीतरसे सूर्यदेव प्रकट हुए.
उगते सूर्यमेंसे किरणें प्रस्फुटित हों

वैसे कृष्णदेवके अङ्ग-अङ्गमेंसे
अन्तरिक्षको भरते हुए प्रकाश फैल उठा.

मेघवर्ण देहस्तम्भमें
बिजलीकेसे नयनबाण लीला करते थे.

चन्द्रिका मिटाकर सूर्यभर्ग दमदमा उठे
इस तरह प्रतापभास्करमें कृष्णदेव
सुकुमारतासे भव्यताको प्राप्त हुए. ४०५

"मेरे भी जीवनमें बहिना !
युगपलटा प्रकटा आज.
आत्माकी सरिताके हुए हैं सागर."

"सुराष्ट्रके सागरवासमें हुआ है
यह तेरा आत्मविकास, वीर !
और यह भी है 'रसो वै सः' काही अवतार.
बालमुकुन्दभाव त्याग कर
विराट्स्वरूप हुआ है मेरा कृष्णदेव. ४१३

मनुष्योंमें महाहिमाद्रि सा खड़ा आज." ४१४

वटको लता नमे
सुभद्रा उसी तरह कृष्णदेवको नम रही. ४१६

युगपलटेकी महाघोषणा
सहसा यों गाज उठी.
और महासागरके महावनके
विटप–विटप और जलपत्ती–पत्तीमें
इस भैरवनादकी पदचिह्नावली हो गयी. ४२१
इतनेमें ही भगवान् सूर्यनारायणने
किरणग्रथित तेजकवच धराया, ४२३
तेजमञ्जरीका मुकुट पिन्हाया,
किरणें वरसाकर कृष्णदेवको आशीर्वाद दिया. ४२५
आकाशमें हज़ारों नीलमेघ गरजें
ऐसा वह शङ्खनाद गरज रहा था. ४२७
इस महासमुद्रके तटपर,
दूसरे मानव महासमुद्रके एसे,
युगपलटेके शङ्खनादको गुँजाते हुए
कृष्णदेव वहाँ खड़े थे.
काललहरोंकी सी जल-लहरें ४३३
आ-आकर चरणोंको चूमती जाती थीं ४३४
सोमतीर्थका भीषणघोष सागर
आज भी उस शङ्खनादका निर्घोष कर रहा है. ४३६



महासुदर्शन

महासुदर्शन



वह एक कन्दराथी:
मानों नीरका अतल पाताल कुण्ड.
नीरके रंग इसके रंग थे
गहनता के किनारे वहां सब बैठे थे. ८

दिशायें देख पड़तीं वहांतक चारों ओर
योजनों फैली वीरानी की विजनंता थी.
वहां गगनकी नगरियां थीं,
वहां वायु के सुसवाट बोलते थे.
पानीपत प्रारब्धकी हथेलीके समान था,
महा संस्कृतियां इस हथेलीमें खेलती थीं. १०

कालके शंखनादके ऐसे,
सन्नाटे के भेरीनाद के ऐसे,
घोर घोर आंधीके शोर
गैबी घंटारवके ऐसे, वहां गाजते थे;
और जगतको मानो कहते थे कि
" सुनना कालके इस डंके को. " १६

बादलबरनी और पातालगहरी
मानो यह एक महाकन्दरा थी.
विध बिध बरनका समस्त संसार
इसे कहताथा ब्रह्मावर्त का ब्रह्मकुंड. २०

यह था कालका कूप.
भूत भविष्यके दर्शन के लिये
संसार यात्री वहां सञ्चार करते.
कुरुक्षेत्रके गैबी ब्रह्मकुंडके तीरपर
शिलाओं के पाटपर मानव शिलाओंकेसे
ये वहां बैठे थे. २६

कुरुक्षेत्र का यह ब्रह्मकुंड
काललीलाका मानो छोटासा सरोवर था. २८

इसे गगनप्रतिबिम्ब भी कहते थे.
गैब का यह दर्पण था, ३०
इसमें गहनताके प्रतिबिम्ब गिरते थे.
अदृष्ट के उकेलनेवाले
पानीके इन पत्रोंको पढ़ते थे. ३३

महावन जलकर भस्म हो
और बीचमें पांच वड़ रहे:
ऐसे अठारह अक्षौहिणी सेनाके वन—
और इनका एक एक जोधराज
प्रफुल्लित वृक्षराज था.—
ऐसे अठारह अक्षौहिणी सेनानियोंके महावन
संहार की विश्वज्वालामें भस्म हुए:

अवशेष में ये पांच वड़ थे.
कुरुक्षेत्रकी विजनताकी आंधी चलाते
कालके डंकेके ऐसे वायु गड़गड़ाते थे
और समझे उन्हें भीषण प्रवोध देते थे कि
"सागर उछलता था वहां आज सुनसान है."

वड़ की चोतरफ़ रहनेवाली वट जटाओंसी
वल्कलधारिणी इनकी वीराङ्गनायें विराजती थीं;
मानो तपोवन की त्यागमूर्तियां ही न हों.
संसार के विसराम स्थानके ऐसे सन्मुख
मुनिपुङ्गव भगवान व्यास नारायण थे;

मानो कालगुफाके योगीन्द्र.

सारा दिन वनअटवीयोंको घूम घूम कर
थक कर शिथिल हुए सिंहराज
सन्ध्या समय सरोवर तीरपर विश्राम ले,
वैसे हस्तिनापुर के पंचायतन सिंहराज
जीवनके वन घूम घूम कर
ब्रह्मावर्तके ब्रह्मकुंडके किनारे बिराज रहे थे. ५७

पीले पानोंके ऐसी राजरानियां
निस्तेज किन्तु सुवर्ण वर्णवाली थीं. ५९

दैवी बोलसे महामुनि बोले: ६०

'पितृ श्राद्ध किया, पितृलोक को नोता;
निरखो अब भूतकालकी भूतावली.
कुरुक्षेत्रका पुण्य विजय– ६३

'विजय! यह विजय है या पराजय?
इसे विजय न कहो:
यह तो है पराजयकी पराकाष्टा.

प्रफुल्लित महावनमें दावानल चेता
उसको भस्मभरी खनियोंमें
इस संसार चिताके भस्म ढंगको देखते
शिखर पंचानन खडे रहें;

ऐसा है यह संग्रामविजय:
मानो संसार चिताके भरे भस्म ढंग.
महा सेना का मात्र नहीं है यह संहार,
महा संस्कृतिका संहार है:
'आर्यकुल की मोरों आई हुई शाखाओंका
मानो जड़ामूलसे उच्छेद.'

गुफ़ामें घोरता हुआ महावायु गाजे,
धर्मराज के हृदयकी गुफ़ा
ऐसे घोर शब्दसे गाज उठी.
फिर पृथा पुत्रों के पुरोहितदेवने उच्चारा:

'युगके युग कहेंगे इसे
कुन्तीकुमारोंका पुण्य विजय.
और भारत सन्तानोंकी महावार्तामें से

परम नीतिमन्त्र—सार लेंगे मनुवंश
कि—**यतोधर्मस्ततोजयः**
जनता मनावेगी कुरुक्षेत्रके विजयोत्सवको
और भूगोल गावेगा कुरुक्षेत्रके महागीत
पृथ्वीके आयुष्यकी अवधि तक.
लो यह आचमन
और पूर्णाहूति करो पितृश्राद्धकी.'

'पितर क्षमा करेंगे इस संहारको?
कुलदेवता माफ़ करेगी इस कुलध्वंसको?
महामुनि! निहारो कुरुक्षेत्रका रणस्थल:
वीरानीकी निर्जनताका मानो विश्वफैलाव.
सेनानीओंका वहां सागर लहराता था;
और एक एक जोधराज था
इस मानव महासागरका महामौज.
सुनकार के विश्वचौक सा
आज खड़ा है यह कुरुक्षेत्र,
मानों जल उलींच डाला जगसरोवर.

मन्वन्तरोंको निहारते हुए महामुनि!
संहारके विना क्या संसार नहीं निभ सकता?' १०२

पाण्डु पुत्रोंका यह त्रिकाल प्रश्न
आसमानकी दीवारोंसे जाके टकराया;
पृथ्वी के हृदयमें उसकी प्रतिध्वनि हुई. १०५

'महानुभाव! भूलते हो,' ब्रह्मर्षि बोले.
संहार कहतेही नवसर्जन, मृत्यु कहते ही नवजन्म.
नव सर्जन रहित संहार
अधर्म अनाचार अनार्यता है.
देखो–देखो, कालके ये परदे हटते है. ११०

निहारो, महाराज!
जुग जुग के जन्मान्तर की यह जगतवार्ता.' ११२

तेज तेजकी प्रतिमासे
सत्यमूर्ति धर्मराज बोले;
'आज्ञा मुनिवरकी
खोलो ब्रह्माण्डमंडलके परदोंको,

और दिखलाओ भरतगोत्रका गुणमहिमा.
आत्माके महा शोकको उतारेगा
यह अद्‌भुत दर्शन. ११९

'एकही शरतपर दूर होते हैं १२०

गैबी गहनताके आवरण.
नहीं तो आयुष्य बीतती है
तभी हटते हैं, ये ब्रह्माण्डके परदे.' १२३

'फ़रमाइये: पालेंगे सबकुछ.' १२४

'भरत गोत्रका भूपालवंश भाग्यशाली है;
महानुभाव है, ऊर्ध्वदृष्टि है:
धर्म पालेगा तबतक अमर है.
धर्मधारी राजन्! सुनिये
और शोकशल्यको छोड़दीजिये.
शोक यह महा शिला है हृदयको. १३०

अश्रुसे ज़मीनको नहीं जलाते,
'ओहो' शब्दसे आकाशको नहीं टकराते,,

खुले आसमानके समान
इनके लिये ब्रह्मांडपरदे उठजाते हैं;
विश्वम्भरके योग सिंहासन से
अदृष्टके सिंहासन दर्शन देते हैं इन्हें.
सर्वकल्याण ताकती हुई आंखके लिये
गहनता दृष्टिदेशही है,
युगयुगके आसमान और लोकलोककी लीला
इनके मनस्तम्भपर रक्खे देवप्रकाश हैं. १४०

'शुद्ध आंख ही विशुद्धको पहचानेगी.' १४१

'महामुनि ! पत्थरमें से भी पानी टपकता है;
शिला भी सजीवन हो तो
भीतरसे झरनें झरते हैं.
प्रतिज्ञा कराते हो तो, भले,
कालदृष्टिसे भी क्रूर–कठोर होंगे.
परन्तु सचेत शिलासे भी
मानवीको कठोर सरजोगे ? १४८

'कूटस्थः घनके घाव पड़ें

या सुनहरी अंगरखियां चढ़े १५०
तो भी स्थिरबुद्धि और एकस्थ;
आंधी और वर्षामेंभी न हिले न बुझे वह रत्नदीप;
ऐसे संसारभरके बभूलेमें भी एक ज्योतिः
उदयाचल पर उदय पाते या अस्ताचलमें आंथते
एक अखण्ड ज्योतिर्बिम्बः
सदाका तेजोवर्ण, आनन्दरंगी, आत्मानन्दी.
ब्रह्मानब्धके आनन्दोत्सवी ही
कालकन्दराके जोगीन्द्र है.
ब्रह्माण्डरस के ज्वारमें ये लहराते हैं.' १५९
'इस तट के पत्थर होवेंगे १६०
इस मैदान के समाधिस्तम्भ बनेंगे
युगदृष्टा महामुनिजी !
दर्शन कराओ पुण्यप्रतापो पितृलोकके,
विधाता के हृदय सी अदृष्टकी गहनताके,
कि क्षमा मांगे आत्माकी अघोरताकी,
आर्यसंस्कृति के महासंहार की.
महर्षि ! यह था संस्कृति का संहार.' १६७

आसमान टकटकी लगाये था.
कुरुक्षेत्र के आंधी बगूले थम गये थे.
वृक्षराजों की नई कोंपलें भी
थड़की सी स्थिर थीं.
प्रारब्ध सा अनलवर्ण अन्तरिक्ष
पृथ्वीपट सा अचल था.
तेज की मात्र किरनें बरस रही थीं,
पृथ्वी एक ब्रह्म यात्रा कर रही थी.
कुरुक्षेत्रकी विजलता को
दिशा मण्डलका दुर्ग घेरे हुए था.
आत्माके आयुष्यके ऐसा वातावरण
गहन, पुण्यवान, पारदर्शक, अनन्त फैला हुआ था.
कुन्तीकुमार के महा शब्द
जलपर बाणके ऐसे जाकर पड़े.
ब्रह्मकुंडके पातालतल जलस्तर पर
मानो कटारियां लगीं,
जल फटे, जलमें के आकाश खुले;
गहनताके दुर्गद्वार उघड़े.

नव वसन्तके समय वायुमें आमके मोर उड़ें
ऐसे जल फंवारे के शीकर उड़े,
औ शीकर-शीकर फटकर जोगमायायें प्रकटीं:
मानो गहनताकी साक्षान्मूर्तियांही न हो.
तेज वदलीकी घड़ी हुई देहवेल थी,

आकाशकी ओढनियां थीं,
तारों की सी आखें झलमलाती थीं
और इन आखोंमेंसे अन्तरके उजेले उगते थे.
कुरुक्षेत्रके ब्रह्मकुंड की सी ही गैबी
मुखकी मुखमुद्रा थी.
भाग्यके कमंडल से
कालके शरभाथे से
स्कन्धदेश पर खप्पर भरा रक्खे थे.
प्रकृतिकी महापुत्रियोंकी सी जोगणियां
सीढियां चढ रही थीं.

प्रत्येक की बाहु दांडियोंसे

कालघंटा लटक रही थी.

ब्रह्माण्डडंका बजा,

मानो गैबकी घंटा बजी.

फिर फूल पंखड़ियोंकी खुशबू महकती हो,

या अद्भुतता माधुरी बरसाती हो,

ऐसी जलटोकरियां बोल उठीं

और माधुर्यका मधुरव हुआ.

जगतकी जोग मायाओंका गान गर्जा. २०९.

रसकी लीलाको हम निकलीं२रे लाल, २१०
भव्यभाग्य हम ब्रह्मनन्दिनी
आनन्दिनी रे लाल:
हरिकी लीलाको हम निकलीं२रे लाल.

एक योगमाया:—

कालकन्दराकी मैं तो कालिकारे लाल;
मम नैनमें जन्म मृत्यु हास:

सब जोगमायायें:—

ब्रह्मानन्दिनी आनन्दिनिरे लाल:
हरिकी लीलाको हम निकलीं२रे लाल. २२०

लोक लोककी हम विधात्रियांरे लाल;
उदय अस्त ये हमारे रासः
ब्रह्मनन्दिनी
आनन्दिनी रे लालः
हरिकी लीलाको हम निकलीं२रे लाल.

एक जोगमायाः—

आनन्द चउदसको मैं अवतरीरे लाल;
झेलूं आनन्दके रसभावः

सब जोगमायायें:—

ब्रह्मनन्दिनी आनन्दिनीरे लालः २३०
हरिकी लीलाको हम निकलीं२रे लाल.
विश्वविश्वके विहारको विहरतींरे लाल
सर्जनप्रलय खेलें धूपछांह;
ब्रह्मनन्दिनी
आनन्दिनी रे लालः
हरिकी लीलाको हम निकलीं२रे लाल. २३६

बीच बीचमें कालघंटा बजे जातीथी:
मानो युगपलटेका डंका लग रहा हो.

आंखोंमें देवदीपक थे,
भालमें भौंओंपर देवदीपक थे.
अलक लटोंमें मोतीसे देवदीपक थे.
अङ्गअङ्गमें देवदीपकधारिणी,
पान पान पर आगियावाली वृक्षघटा सी,
जोगमायाओंकी चौसट योगवल्लियां
ब्रह्मकुंडकी सीढियोंपर पैर रखती थीं.
गहनताकी चादरें ओढ रक्खी थीं,
त्रिकालके अंजन आंज रक्खे थे,
वदनकान्तिमें अकाशी भयङ्करता विराजती थी,
विश्व भीषणताकी मूर्तियों सी
महामृत्युकी अधिदेवियां आ रहीथीं.

'राजन् निरख लो
जगतकी इन संसार दुर्गाओंको.
विश्वका घोर सत्य कहूं ?

स्रष्टा सर्जनके पहलेही संहारको सरजता है,
जन्मके पहलेही आयुष्यकी अवधि आंकता है.
निरखो कालकी इन खड्गमूर्तियोंको.

'अघोर हैं इनके दर्शनः
मानो वज्रकी वज्राङ्गनायें.
धरनी धूजती है इनकी परछाईंसे;
चेतन को भी मूर्च्छा आती है.

शृङ्गवाले गिरिवरके शिखरों से
पांचों ही पुरुषप्रवर अचल थे
भवकी इस भयङ्करताके सन्मुख.
गम्य या अगम्य भयछाया से
नरवीर कम्पित नहीं होते कभी.
पातालने मानो मुंह खोले:
भीतरसे ज्वालायें और अङ्गार उड़ने लगे.
कालकी भट्टीके साम्हे
मानो कुन्तीकुमार बैठे थे
इस कालभट्टीकी महाज्ञालोंमें

अनेकानेक संसार सरजातेथे और संहार पाते थे. २७९

'यह है योगमायाओंका परिवार.
और धर्मपुत्र ? धारते हो उतने उतने
जगत ज्वालाके नहीं हैं इनके अङ्ग
आधी देह है इनकी अग्निघड़ी,
और दूसरी आधी है जलसे बांधी हुई.
जगतकी कालिकायें ये हैं
मृत्युकन्दराकी ये महादेवियां
तुम्हारे लिये उठावेंगी २८०

मृत्युलोकके अंधेरे परदोंको.' २८१

चोसठ,–दिशाओंके अणि-अग्रभागमें
जोगमायायें, बिखरकर बिराजीं;
मानो दिशा दिशाकी अधिष्ठात्रियां न हों. २८४

'इनके त्रिशूलोंकी नोकनोक पर तो
नीलेनीले नागनेत्र चमकते हैं!' २८६

'पृथ्वीके प्रारब्ध लिखती हैं आज:
देखो, युगपलटा उदय पारहाहै अभी,
द्वापर उतर कलि बैठता है.
और पुण्यशील! पृथ्वीलोक कहते ही २९०

सर्जन संहार और सर्जन लीला;
तेज अन्धकारकी धूपछांह.
सर्जनलीलाके ही उपासक
हैं खेवटिये ब्रह्माण्डनगरीके नगर चौकके;
संहार चिताके ही भस्मधारी
हैं ब्रह्माण्डकी स्मशानशय्याके खाकी.
राजन्! जन्म और मृत्यु कहते
ब्रह्माण्डदुर्गके आनेजानेके दरवाजे;
भीतर होकर जिनके जनता आवे और जाय. २९९

पानीके पटल इकट्ठे हुए ३००

जललहरें पर्वतमाला सी देखपडीं;
बीचमें खनियोंके जगरेखायें भासित हुईं.
और अटवीको आच्छादित कर जगखनिकी
गहराईमेंसे बादल उड़ते आवें,

ऐसे इन जलखनियोंमें से पितृप्रवर प्रकटे. ३०५

जोगिणियों के डंके वज ही रहे थे;
मानो जगतको जगाते और कहते थे
कि 'अवसर का योग उग आया है.' ३०८

भवाटवी के पान पान पर यों
युगपलटे की परछाया फैलती थी. ३१०

हवेलीके झरोके झरोके पर मोर बैठे
इसतरह जगझरोके पर गोत्रप्रमुख विराज रहेथे. ३१२

ब्रह्म बोलके समान मुनिपुङ्गवने उच्चारण किया;
'अञ्जलि उदक से भरो;
सूर्य विम्वसे अनिमिष नयनसे
इन जलमणियोंमें निहारते रहो;
आशावाले इच्छादर्शन पांयगे.' ३१७

संसारकी थकावट भरे ऐसे
वृद्ध सिंह के समान पाण्डुकुमार

ब्रह्मावर्तके ब्रह्मकुण्डके किनारे बैठे हुए थे,
गहनताकी गुहामें निगाह डाल रहेथे.

रत्नखानमें जाकर देखा है ?
सन्ध्या वर्णवाले व्योम चंदवेमें
नक्षत्र मण्डलके दैवी झाड फानूसोंको तो
अवतीर्ण होते देखे हैं न ?
जलभूल—भूलैया—वाले दहके किसी तीरपर
आगियावाली वृक्षराजि निहारी है न ?
फूलझड़ी में से फूल झड़ें
या हुक्केसे अग्निस्फुलिङ्ग उड़ें;
जल लहरोंकी डांखळियां डांखळियां पर
ऐसे जीवात्माकी चिनगारियां उड़ीं,
स्वर्मन्दाकिनी की हज़ारधार देवमाला टूटें
और दिशादिशामें ताराओंकी वर्षा बरसे,
आत्मतत्त्व की वर्षा की ऐसी फुइयां
अन्तिरिक्ष को उज्ज्वल करती हुई उछल रही थीं.
देशदेशमें आश्चर्य पुलकावली आनन्द देती है
वैसेही विश्वपुलकावली आनन्द देने लगी,

और जगत पीछेके अगत प्रकट.
सन्ध्याकी सन्धिके महलसे
पितृलोकके देवाश्रम दिखाई दिये.

प्रारब्धकी शाखासे फल चुनती,
आशाकी पांखोंपर उड़ती,
देवयान मार्गपर दृष्टि किरनोंको फैलाती,
पुण्य पाप की वेशभूषासे सजी,
भरी भरी बदलीके ऐसी
भरी हुई भी घनश्यामला,
विहंगराजसी उर्ध्व दृष्टिवाली,
ब्रह्मतीर्थ के यात्रियोंकी सी
पितृलोकमें की पितृजनता
आयुष्यपालकी पगदंडी पर चढ़ रही थी.

चन्द्रमाके किरणमंडल सी
पृथ्वीलोकमें वह उतरती
और परावर्तन पाकर पीछी उड़ती थी..
और अखण्ड एक मन्त्र उच्चरती थी कि
‘ पृथ्वीके आयुष्यकी अवधियां
नहीं हैं ये अवधियां आत्माके आयुष्यकी.

अनन्तको पहचनवाते महामुनि बोले:
'राजन् ! पृथ्वी कुछ ब्रह्माण्डका छोर है'?

बड़पर बैठी चिड़िया उड़े,
ऐसे पाचों मानवबड़से

दृष्टिकी चिड़ियां उड़ती थीं
बटजटाके टपोरे की रक्तिमा सी
रूपमणियोंकी उंगलियोंकी लाली
अद्भुतके आश्चर्यनिर्देश निदर्शित करतीथीं,
और कहती थीं: 'नाथ ! ये अद्भुत देश.'
तेजभीनी तारिका दिशामण्डलको नमे
ऐसे राजदेवियां पितृप्रवशेंको नमीं.
नकुलदेवने नमन किये:
सहदेवने प्रजाप्रजाके भाग्य बांचे;
मध्यान्हका सूर्य फीका पडे तो नेत्र झपके

ऐसे पराक्रम मूर्ति भीमसेनने
नेत्र नीचेकर अंग झुका प्रणाम किया;
गाण्डीवधन्वा अर्जुनने धनुष्य चरणोंमें रखदिया.
धर्मनिष्ट धर्मराज उठे,

पूज्यको पूजासामग्री समर्पित करे ऐसे
साष्टाङ्ग प्रणिपात किया और बोले;
'क्षमा दीजिये, हमारे घोर कर्मकी क्षमा;
कुरुक्षेत्रके संहारकी हमें क्षमा बख्शिये.
यह था संस्कृतिका महासंहार.' ३७९

महामुनिने बच्चेकी भांति पंपोला, ३८०
तीर्थजलका अभिषेक किया, और कहा,
'क्षत्रियकुलके वीरवंशज को
नहीं होसकता धर्मयुद्धका क्षमायाचन.
महानुभाव भरतवंश तो है
पृथ्वीका पराक्रम तीर्थ.
आश्रमधर्म विरुद्ध उच्चारण करते हो.
महाभाग धर्मदेव !
धर्म ही धारण कर रहा है धरणीको.' ३८८

कालका डंका बज रहा था;
पितृलोक की प्रतिबिम्बनगरीको ३९०
पाण्डुपुत्र पूज्यता की निगाहसे निरख रहे थे. ३९१

इतनेमेंहो एक गगनकी बिजली कड़की;
मानो विधाताकी दुंदुभि बज उठी;

मानो कालके महापूर टकरा गये.
कुरुक्षेत्रकी त्रिकालघोर मंडालतिथिको

सेनाके मेघ महामेघ से टकराये
तब गाजा था ऐसा महाध्वनि.

आकाशको बिदारता ऐसा तुमुल शब्द हुआ.
दिशाओंमें उभरता इसका प्रतिध्वनि पड़ा,
और ब्रह्मकुंडके पाताल फटे.

वनराजिके पीछे गिरिशृंग देखपड़ें
मेघमालाके पीछे आकाशकोर जान पड़ें
आयुष्यके पीछे मृत्युकी करोत निगह पड़े,
ऐसी कोई गैबकी करवतकंगुरियां.
विधाताके त्रिशूल मंडलसी
ब्रह्मकुंडके जलउत्संगसे उछलती आपहुंचीं.
प्राकट्य की प्रथम पलमें भासितहुआ कि
पृथ्वीपुष्पके मानो पंखड़ियां प्रकटीं.
फिर मानो जलक्यारीमें खडग उगे.

फिर मानों सागरके जलकोट मंडे
फिर मानो ताडवनके मस्तक धुने.
और फिर फिर-से फिर, और फिर
इन्द्रके बाणफलोंके वज्रकंगुरे
सन्मुख अन्तरिक्षपाटपर मण्डितहुए.
यज्ञकुंड ज्वालामण्डलको उछाले ऐसे
अग्निचक्रके ज्वालफैलाते अर्द्धवर्तुलसे
महदवकाश को भरदिया.
दिक्पालोंकी दंतिकाओं सी,
महाकालकी जिव्हाओं सी,
ये अदृष्टचक्रकी वज्रदन्तिकायें
अन्तरिक्षमें अङ्कोंको आलेखती खड़ी हुई.
इनके दांत दांत में लिखाथा
'है' और 'नहीं' और 'है'.
जगत को भरता, अन्तरिक्ष को भरता.
महायज्ञ के होमधूमके ऐसा,
आसमानमें कंगुरे कोरता कालचक्र घूमताथा.
'धर्मदेव! यह है महासुदर्शन.

कुरुक्षेत्र के कृपण–तुच्छ संहार
प्राणोंको विषादविष पिलाते हैं,
निरखो इन ब्रह्माण्डोंके सर्जनों और संहारोंको

परमाणु बड़कर पत्थर होते हैं,
पत्थरमें से-पर्वत-प्रकटते हैं,
पर्वत प्रफुल्लित हो लोकलोक सरजे जाते हैं,
दुनियायें पिसपिस कर
पीछे परमाणु बनते हैं:
यहहै सर्जनसंहार का महाचक्र.
जन्ममृत्यु अर्थात् जीवनलीला.
दिशाचक्करमें घूमता हुआ विराटचक्र कहता है
' राजन् ! जन्ममृत्युसे परे देख,
वहां हैं परमानन्दके देश. "

डंके बजाकर योगमायाओंने
विराटचक्रकी आरती उतारी:
मानो तारिकामंडलने गगनमंडलको सत्कारा.
विश्वका घूंमट गाज उठा.

किरणोंसे चमचमाता सूर्यराज चक्कर पर चढ़े,
महेन्द्रका देवधनुष्य दिशाओंकी परिक्रमा दे,
ऐसे यह महिमासे घूमता महासुदर्शन
ब्रह्माण्डके चक्रपर चढ़ा.
व्योमस्तर पर रेखा पाड़ती,
स्थूलसूक्ष्ममें आसमानीपंथ बनाती,
काल-अवकाशके हियेमें पदचिन्हावली करती,
विधात्रीकी लेखिनी सी
इसकी वज्रदन्तवाली दन्तमाला
जगन्मन्त्र लिखती घूम रहीथी.
मनके मनके को उछालती
ब्रह्माण्डनाथकी अक्षमाला सी
महासुदर्शन की वज्रदन्तावली
विश्वघूमर पर चढ़ी.
कुरुक्षेत्र खेलते वीरोंके हृदय खलबला उठें
ज्वारभाटेके समय महासागर खलबला उठे,
प्रलयकालमें लोकलोक खलबला उठे,
ऐसे ब्रह्माण्ड खलबला उठा. ४

पर्वत से पाण्डुपुत्र अचल थे.
परन्तु सूर्योदय से शिखर अंजावे
ऐसे आंखें अद्भुततासे अंजा गईं.
पाण्डव अंगनायें वीराङ्गनायें थीं,
कुरुक्षेत्र के महासंग्राम रसदृष्टिसे पान कियेथे,
पुत्रोंको, पिताओंको, बन्धुओंको, सम्बन्धियोंको,
हृदय शाखासे चुनचुन कर
अघोर रणयज्ञमें हवि से होमे थे:
ये पांडव वीराङ्गनायें भी क्षणभर
महासुदर्शन के भीषण दर्शनसे
फूलकी पंखड़ियोंसी धूज गईं.
और वट कों जटायें घेर लें
ऐसे निजनाथके चोतरफ़ घिर गईं.
पद्मिनीपत्र पद्मको हियेसे चांपे
ऐसे उत्तराने बालपरीक्षितको
हृदय की पंखड़ियोंमें चांपलिया.
थड की चारों ओर घेर घमेर घेरावे
ऐसे ये मानव वट

सौन्दर्य घटासे शोभित हुए.
एककी भी वीरतापूर्ण मुखमुद्रामें
क्षणभर के बाद न भय था और न ग्लानि ही.

अद्भुत देखने से होते हुए आश्चर्य,
गहन अवलोकन से होती हुई चकितता,
अश्रुत और अकल्पित निरखनेसे
होती हुई वाणी की मौन:
ये इनकी आखोंमें रम रही थीं. ४८८

'कुरुक्षेत्र पीछे सजीवन होगये.
नाथ गहनताका यह महामहिमा लोक,
भरत कुल के ये पितृप्रवर: '
उत्साहपूर्ण कंटसे उत्सव मूर्तियोंने उचारा. ४९२

नरावतार, नृलोकके नरमणि,
गाण्डीव धन्वाने गाण्डीव टंकारसे कहा:
'काल, काल.' ४९५

विराट सुदर्शन के वज्रदांते

विधात्री के त्रिशूलफल के से
दिशाओं को काटते, हिलातेडुलाते, घोराते थे.
दांते दांते पर लोकलोक छेदे जाते थे.
और नवनव सर्जन सरजे जाते थे

गैब के मन्त्रोच्चारण कर रहे हों
ऐसा महामुनिने उच्चारण किया:
'कालगंगा के ऐसे कुरुक्षेत्र को
तैर कर पार करने वालों को भय कैसा ?
भरत कुल वधुऐं तो पहचानती ही नहीं भयको.

असिधाराव्रत जीवनव्रत हैं इनके.
सदाशिवके कोदंडसे खेलना
ये तो सीतापुत्रियोंके आनन्दखेल हैं.
आयुष्य के खड्डों के किनारे किनारे संचार करना
ये तो मानो सहेलियोंके

नित्य जल बेवडा भरने जाना है
महाकाल के बगूले उठने पर
पत्तोंकी भांति पामर फरफराते हैं
ये मौत की घाटियां

वीराङ्गनाओं की पगदंडियां हैं.
ये तो हैं अद्भुत की अनुकम्पा,
ये तो हैं गहनताके आश्चर्य आन्दोलन.
दुःख दीप्यमान द्रोपदी ! सागरमणि सी सुभद्रा !
विराट कणिकासी कुलमाता उत्तरा !
भरतगोत्रकी कुलमाताओ ! ५२०

तुम्हारे कलेजे हैं कालके घड़े हुये.
गैवी गहनताके भी परे संचार करो;
और उसके बाद देखो इस विराट सुदर्शनको,
दिशा विस्तृत करते ब्रह्माण्डभरमें
और ब्रह्माण्डपर चक्कर खाते फिरते हुए को.' ५२५

'वन्दन हो इस विराट चक्रको:'
पाण्डवपरिवारने भरे हुए स्वरसे कहा. ५२७

मुनिवर्य क्षणभर स्थंभित हो बैठ गये,
जगयात्राके मानो विश्राम किये.
स्वयं स्वयंको पलभर छोटेसे भासे, ५३०
पाण्डव परिवार भी क्षणभर पामर लगा,

दृष्टिमें देवके पहाड़ घूमते थे
विराट सुदर्शनके दांने दांते पर
पराक्रमज्योति प्रगट रही थी,
पितृमहिमा मोराता महकता था.
होम की पूर्णाहुति के लिये ऋत्विग् उठे
ऐसे पीछे मुनिपुङ्गव उठे
सघनघटा घेरे वृक्षराज की भांति
हस्तशाखाओंको फैलाकर इकठा करते हुए बोले: ५४९
‘ पृथ्वीके प्रारब्ध वालो ’ ५४०

यह भयमूर्ति कालचक्र नहीं है,
यह तो आनन्दमूर्ति कल्याणचक्र है.
विलोको इन वज्रदन्तावलियोंकी नोकें:
इसकी नखरेखाओंमें हैं ब्रह्मअंगुलियां.
निहारो इसका सागरविशाल नाभिचक्र:
इसमें है परब्रह्मका हृदयमण्डल.
परखो इसकी अवकाशऊपरकी परिधि:
इसमें है परमात्मन् की भर्गज्वाला.

इसके संहारमें हैं सर्जनके अंकुर.
भग्तकुलहितैषी; जगज्जनताके जगद्गुरु, ५५०

विश्वके पुण्यवंशके–पापवंशके कल्याणकारी,
प्रेमकी पूर्णिमाके पूर्णेन्दु,
आनन्दज्योति ब्रह्माण्डभास्कर,
देखो, श्रीकृष्ण विराज रहे हैं
इस विराटसुदर्शनके सिंहासनपर.
सुदर्शनलीला तो लीला है सुदर्शनधारी की.' ५५६

सकल पाण्डुपरिवार खड़ा होगया,
और नमती–झुकती वृक्षराजिसा नमगया.
फूल से अंग चरणमें डाले,
परिमल सी आत्माओंसे अभिषेक किये. ५६०

विराट सुदर्शनका नाभिचक्र तब
कृष्णचन्द्र के हृदयमण्डल सा देखपड़ा,
विराट सुदर्शनकी वज्रदन्तमाला तब
ब्रह्म अंगुलियों सी दिखाई दीं.
और दांते दांते लिखा हुआ मन्त्र नजर आया
'विश्वकल्याण.' ५६६

विराटसुदर्शन विराटकमल सा भासित हुआ;
और उसकी पंखड़ी पंखड़ीमें

पाण्डुपुत्रोंने पितृप्रवरों को प्रतिष्ठित पेखे.
इनकी आंखोंमें से आशीर्वाद बरस रहे थे. ५७०

दूर—दूरसे कालघटा बजी;
जगतकी जोगमायामें गरबा घूम रही थीं. ५७२

भव्यभाग्य हम ब्रह्मनन्दिनी
आनन्दिनी रे लाल:
हरिकी लीला को हम निकलीं२रे लाल. ५७५

महाकालके डंके बजातीं,
सर्जन—प्रलयके गीत गातीं गातीं
अदृश्यमेंसे योगमायायें उतरीं,
और ब्रह्माण्ड सुदर्शन के दांते दांते पर
एक एक चढ बैठीं. ५८०

महांचक्र तो चौदह लोकके चक्रमें घूमता था.
इनके अक्षयपात्रसे खप्पर

विधात्रीके कुंकुमचोपड़े बनगये,

इनके त्रिशूलके भाले

विधात्रीकी भाग्यलेखनियां हो गये.

अमङ्गल सर्व मङ्गलस्वरूप हो गया.

महामृत्यु के संहार क्षेत्र भी

पुनर्जन्मकी क्यारीरूप देख पड़े.

फिर पीछा कुरुक्षेत्र सजीवन हो उठा.

अठारह अक्षौहिणीके प्रचंड प्रतिबिम्ब ५९०

घड़ीभर वहां घूम रहे. ५९१

बिजलीभरी बदलीसी

भरतकुलमाता उत्तरा उठी.

सिंही के साथी सिंह शिशुके ऐसा

बालकुमार परीक्षित था.

चन्दन–अक्षत–पुष्प से पितृप्रवरोंको

पूज, नम, वन्द, प्रणाम कर

कुलमाता सी बोली: ५९८

'पूज्यको पूजती हूं,

वन्दनीयकी बन्दना करती हूं पितृप्रवरो !
आंगने आये हो
तो आशीर्वाद देतें जाओ.
महामृगयामें सिंहोंके वन कटजांय
ऐसे कुरुक्षेत्रमें केसरीके वन कट गये.
पीछे एकही सिंहबाल रहे,
पाण्डुका कहो या कुरुका कहो,
ऐसा एकही है यह भरतकुमार.
महाधन्वाओंको पृथ्वी अच्छी न लगी ;
सो जा कर स्वर्गको सुशोभित किये.
एकाकी, निराधार, बिन सोबती,
महावन उखड़जानेपर पौधेके ऐसे
इस बाल कुमार को पीछे रखदिया.
वन सिंहबालके हैं, जगत वीर बालके हैं.
अठारह क्षोणी कुरुक्षेत्रका यह वारिस,
भारतवर्ष इसका परम्परा गोत्राधिकारका है.
आये हो तो पावनकरो इसे,
आये हो तो आशीर्वाद दो इसे

कि 'भरतगोत्रकी अमर वेल अविनाशी हो!' ६१८

योगमायायें गा रहीथीं,

कालका डंका बजाती जातीथीं ६२०

सर्जन–प्रलय खेलें धूप छांह:

ब्रह्मनन्दिनी

आनन्दिनी रे लाल:

हरिकी लीलाकी हम निकलीरे लाल.

पूण्यमूर्ति कुलपुरोहित वोले:

पृथ्वीकुलके प्रारब्धियो!

देवभाषामें तेज अक्षरसे आलेखन किया,

ब्रह्मलिखे ब्रह्माक्षर हों ऐसा,

बांचा यह पितृलोकका सन्देश मन्त्र?

'भरतकुलको भव्यतामें उछेरना. ६३०

कालका भी अन्त आवेगा:

भरतगोत्र अनन्त और अविनाशी है.' ६३२

' महानुभाव तपोधन!

इस महासूत्र का सुविस्तृतभाष्य सुनाओगे ?'
गाण्डीवधन्वाने प्रणाम करके पूछा. ६१

'वीरत्वकिरीटी पुण्यात्मन् ! सुन,
भव्यता ही महा प्रजाओंके भाग्य घड़ती है.
भीष्म पितामहने आशीर्वाद दिया कि
अग्निके विस्फुलिङ्गसा यह बालकुमार
आत्माका अमर अङ्कुर है भरतगोत्रका. ६
सागर सिंह या गिरिशृंग की
पड़ोसमें ही नरवीरोंको उछेरना.
पराक्रमके धावन पराक्रम प्रकटायगे.
महापुरुषों की संगति सधानाः
महापुरुष संसारके संजीवनमणि हैं.
महीतल महिमासूने हों तो
सूर्यचन्द्रके अद्भुत चमत्कार
सर्व सुलभ हैं, नित्य प्राप्य हैं.
सर्वाश्चर्यदेश महाव्योमकी भव्यता
कुल कुल के आश्रम आश्रम पर छाया करती है.
देव ! पितृदर्शन में पुण्य और प्रेरणा है.

त्रिकालकी भव्यता सो जगतका इतिहास.
भूतकालके पितृ परछाइयोंकी छायामें
भविष्यके गाण्डीव धन्वा जन्मेंगे.
अवकाशके अमर पाटपर
कलकी पड़ीहुई पगदंडियां सो इतिहास.
आजकी जड़ गई कलमें है;
स्वप्नसृष्टि सी आजकी कविता
आगामी कलका है संसारजीवन.
प्रजाजनको पहाड़के ऐसे घडना.
भव्यता के धावन धवा धवा कर
महीतलकी महाप्रजाको सरजना.
अद्भुत है, जगन्मोहिनी है
भरतगोत्रके भाग्यकी भव्यता.
भरतगोत्रसे मनुवंश महिमावान है.'
पराक्रममूर्ति पाण्डुकुमारोंकी
दृष्टिमें दिशायें समा गई.
भावीकी कुछ कुछ स्वप्नसृष्टियां
भरतसन्तानोंकी आंखोंमें

तरवर करती उदय पागई.
‘ पुरुषजातिके वीरप्रवरो !
युग-के-युग तुम्हें याद करेंगे,
मानवजाति तुम्हारे महाभारत गावेगी.
देखो, मृत्यु कहते जन्मान्तरकी विराट वार्ता.
कालगुफा कहते गहनताकी महाकन्दरा.
भूतकाल कहते भूतसृष्टिलोक,
श्राद्ध कहते स्मरणसंहिता,
और पितृलोक कहते इतिहास महिमा.
पृथ्वीके पुण्यवानो !
आवे उनके लिये तो
प्रारब्ध मात्र है पुण्यपुंज,
जीवन मात्र है आनन्दलीला;
अनुभव मात्र है रसपान.
जगत कहते चेतनके फव्वारे.
पितृलोकके दर्शनसे पावन हुए.
देखो यह अन्तिम—से—अन्तिम दृश्यः
—जिसके दर्शन हुएबाद जन्मान्तरोंमें भी—

देखनेकी वासना नहीं रहती. ६८८

दिशादेव महासत्वों को वहारहे हों
ऐसे महामुनि बोल रहेथे: ६९७

मानो कालके कालवृद्ध प्रतिनिधि.
पाण्डुसन्तानोंके नयनकमल प्रफुल्लित हुए,
भीतर मानों दिशायें इकट्ठी होगईं.
गहनताके किनारे गेवके आकाशमें
सुधाकर एकमात्र सुधातरङ्ग उछाल रहा था,
विश्व मात्र इसमें लहराता था
ब्रह्माण्डभरमें अमृतकी वर्षा हो रही थी. ६९७

'पृथ्वीमूर्ति पृथाके पुत्रो!
चैतन्यके पूर्णचन्द्र, अमृतके बरसाने वाले
निरखो ब्रह्माण्ड के हैं ये ब्रह्माण्डनाथ. ७००

यही हैं दर्शनमात्र के सार सर्वस्व,
यही हैं विश्वदृष्टिके सुप्रकाश नूर.' ७०२

पृथ्वीकुल के पहाड़के ऐसे

पांचों ही राजयोगीन्द्र उठे,
और पृथ्वीके पुण्यदंडसे
विश्वज्योतिके चरणारविन्दमें ढल पड़े.
यों मानववंश के महावट
परमात्मन् के पैरों पडे:
मानो सागरमें सरित्प्रवाह समाये. ७०९
किरणोंमें दृष्टिकिरण पिरोके ७१०
सूर्यदेवको निरखा है कभी?
अन्तरिक्ष तब प्रकाशकी झड़ जान पडता है.
महासागरके बीचमें खड़े होकर
जलके झूलते हुए महावन देखे हैं कभी?
तभी निरखा जा सकता है ब्रह्माण्ड
अर्थात् आकाश और आकाशका प्रतिबिम्ब—जल.
पूर्णिमाका सरोवर भरकर
चन्द्रदेव छलके ऐसे
ब्रह्माण्ड छलकाते परब्रह्म विराजते थे.
देहके अङ्गवस्त्रों सी
आत्माके शरीर सी

गिरिराजकी वनराजि सी
प्रकृति इनके पल्लव पल्लवमें प्रफुल्लित हो रही थी.
देहको वस्त्रालङ्कार आवरण छुपावे,
जीवात्माको प्रारब्धके पटल ढंके
इस भांति ब्रह्मको ब्रह्मप्रकृति तिरोहित करती थी.
सूर्यबिम्बमें सूर्यभर्ग झमकते हैं,
चन्द्रकलामें चांदनीकी वेल चढ़ती है,
इसी तरह ब्रह्म से ब्रह्मप्रकृति लिपटी हुई थी.
आकाशके उद्यान सिमटके
सूर्यों और महासूर्योंके पुंज प्रकटें
तो भी नहीं कर सकते इस ज्योतिष्पुंजकी तुलना.
करोड़ों तरङ्गोंसे तरवरता सागर
तरङ्गावलीसे खेले,
ऐसे स्रष्टा सृष्टिसे खेलते थे.
ब्रह्माण्डको व्याप्तकर उछाले ले रही थी यह ब्रह्मलीला,
' पृथ्वीपराक्रमवाले मानवमेघ ?
निरखो, परब्रह्मकी यह आनन्दलीला,
स्रष्टा और सृष्टिकी रसक्रीडा.

नित्य अखंड अनस्त अविकारी
अनेक वर्णोंमें भी आनन्दवर्णी.
श्रुति भगवती भाखती है इसे
रसोवैसः की देववाणी से.
आनन्दो, आनन्दो, धर्मराय !
तुम्हने तो धर्म ही आचरा है सदा.
पाण्डुपुत्रोंकी आयुष्यलीला अर्थात्
अवनीका अद्भुतज्योति उजास.'
हटते हुए मेघाडम्बरसी
धर्मराजकी विषादबदली उडगई:
आनन्द किनारेपर कुन्तीकुमार जा खड़े हुए.
ब्रह्मदर्शनसे ब्रह्मानन्द प्रकट हुआ.
अन्तरमें उजेला उदय हुआ,
जगके अंधेरे उड़ गये.
कोई महात्मा आशीर्वाद उचारता हो,
कोई भविष्यवेत्ता भाग्य बांचता हो,
ऐसी कालगंभीर वाणीमें
हस्तिनापुरके धर्ममकुटधारीने कहा:

जहां ब्रह्मर्षिकी ब्रह्मदृष्टि है,
जहां पुरुषार्थके पराक्रम हैं,
वहां अखण्ड मोरतीही है आनन्दलक्ष्मी.
कृष्णचन्द्रने कुरुक्षेत्र जिताया;
महात्मन् ! आपने जीवन जिताया.
मानो ब्रह्माण्ड जीतकर ब्रह्मसिंहासनपर बैठे हैं.'
पुण्यपराक्रमी जीवनविजयी
कुन्तीकुमारोंके रोमरोममें,
भाथेमेंसे शरमंडल प्रकटें यों
आनन्दके किरणमंडल प्रकटे:
पर्वतराजके पुलकावलीसी वनराजि हिलेडुले
ऐसे अंगअंगमें आनन्दराजि लहरा रही.
नयनोंमें भावीके अंजन अंजगये.
त्रिलोकीके हिंडोलेपर झूलती दृष्टि
प्रारब्धके मेघकीसी घोर रही:
देवसृष्टिके स्वप्नतरंगसे
भीतर कुछकुछ इन्द्रधनुष्य तने.
घड़ीएक योंही वीत गई.

फिर, नाटक समेटकर नटवर पधारें ऐसे
मेघ बिदारकर सूर्य प्रकटे, ऐसे
भरतकुलके परमहितैषी,
सर्जन समस्तके परम कल्याणकारो,
अनान्दावतार कृष्णचन्द्रके
इस ज्योतिर्मण्डलमें दर्शन हुए:
मानो देवसिंहासनपर बिराजेहुए देवाधिदेव.
और फिर तो लगा कि मानो
एक भाग्यमें किरीट बनकर बैठा,
दूसरा बाहुओंमें पुरुषार्थ होकर बिराजा,
तीसरा दिक्कालदृष्टा चक्षुओंका तारा हो सोहा,
चोथा इस विश्वानन्दमूर्तिका
वर्णानुरोगी आनन्दवर्ण बन रहा.
महामुनिको धर्मराज जान पडे मानो
कृष्णदेवकी विश्वकल्याणकृत् धर्मबुद्धि.
देहकी पांच इन्द्रियोंके से
पांचोंही पाण्डुपुत्रोंको व्यासनारायणने
परब्रह्मकी पञ्चेन्द्रियोंसे निहारे.

महासुदर्शन

आत्मायें परमात्मामें जा समावें
यों अग्नि विश्वअग्निमें जाकर शान्ति पाये.
ब्रह्मदेहमें भारतप्रवरोंके ब्रह्मस्थान निहारकर
महात्मन् इन मुनिपुंगवके
अंगअंगमेंसे आनन्दओघ उछले,
और दुंदुभिनादसे ब्रह्मध्वनि गाज उठा:
'जय ब्रह्मानन्द!' 'जय ब्रह्मानन्द!' ८००

जगतको जगाती
जोगमयाओंकी कठोर कालघंटा
ब्रह्माण्डचक्रकी दांती दांती पर
अखण्ड बज रहीथी,
हरिके लीलागीत गूंज रही थी:
मानो त्रिकालका डंका बजा. ८०६

ब्रह्मनन्दिनी

आनन्दनी रे लाल:

हरिकी लीलाको हम निकलीं२रे लाल. ८०९

कालचक्रकी घटमाल सा ८१०

सदाशिवकी रुंडमालसा,
महासूर्यके फिरती सूर्यमाला सा,
खाली होते और भराते लोकचक्रसा,
कल्याणमूर्तिके कल्याणज्योति मुखमण्डल सा,
काल और अवकाश के आकाशको जोतता
ब्रह्माण्डके भालमें भाग्यके अंक लिखता,
परब्रह्मका विराटसुदर्शन
ब्रह्माण्डके चक्रपर चढाथा.
भीतर कई कई महासृष्टियां
संहारपाती और सरजाती जातीथीं
महाप्रलयके ज्वार भाटे आते जातेथे.
युग-के-युग उदय-अस्त पातेथे,
और यों युगपलटेकी धूप—छांह पलटातीथी.
जगतकी जोगमायायें
मृत्युके इसमें ओरण ओरती थीं.
इस कालचक्रीमें मृत्यु के भी मृत्यु होते थे.
इस ब्रह्माण्डचक्रका एकही धर्राटथा,
आनन्द.

महासुदर्शन

अनन्तके किनारे बैठकर
इतिहास और कालके महाकाव्य ८३०

परब्रह्म यों रच रहेथे;
मनुवंशकी सकौतुक आंखें
इन आश्चर्योंको निहारती और आनन्दतीर्थां ८३३

महिमा मोराये मनुवंशके
महाभाग सपूत ?
प्रारब्धके परमपाठ
कहतेही आयुष्यकी आनन्दलीला. ८३७

लोकलोक के दडे उछालता,
आनन्द के घोर घोराता,
परब्रह्म के परिमल फैलाता,
अनन्त घूमरमें घूम रहाथा ऐसा
सर्जन–संहार–सर्जन करता महासुदर्शन. ८४२


16547